४ विषय - परिचय

•••••

जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमें प्रथम पांच प्ररूपणाओंका वर्णन पूर्व-प्रकाशित चार भागोंमें किया गया हैं। अब प्रस्तुत भागमें अवशिष्ट तीन प्ररूपणायें प्रकाशित की जा रही हैं - अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम।

१ अन्तरानुगम

विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीवका उस गुणस्थानको छोडकर अन्य गुणस्थानमें जले जाने पर पुनः उसी गुणस्थानकी प्राप्तिके पूर्व तकके कालको अन्तर, व्युच्छेद या विरहकाल कहते हैं। सबसे छोटे विरहकालको जघन्य अन्तर और सबसे बडे विरहकालको उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं। गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें इन दोनों प्रकारोंके अन्तरोंके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वारको अन्तरानुगम कहते हैं।

पूर्व प्ररूपणाओंके समान इस अन्तरप्ररूपणामें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा अन्तरका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानसे कमसे कम कितने काल तक के लिए और अधिकसे अधिक कितने काल तक के लिए अन्तरको प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ - ओघकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है। इसका अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वपर्यायिसे परिणत जीवोंका तीनोंही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं हैं, अर्थात् इस संसारमें मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल पाये जाते है। किन्तु एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर्मुहुर्तकालप्रमाण हैं। यह जघन्य अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंकी विशुद्धिके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्तकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती हुआ। वह चतुर्थ गुणस्थानमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रहकर संक्लेश आदि के निमित्तसे गिरा और मिथ्यात्वको प्राप्त होगया, अर्थात, पुनः मिथ्यादृष्टि होगया। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानको छोडकर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर पुनः उसी गुणस्थानमें आनेके पूर्व तक जो अन्तर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपर्यायसे विरहित रहा, यही उस एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर माना जायगा ?

इसी एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ अर्थात एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोपम काल है। यह उत्कृष्ट अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थितिवाले लान्तवकापिष्ठ कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां एक सागरोपम कालके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तेरह सोगरोपम काल वहां सम्यक्त्वके साथ रहकर च्युत हो मनुष्य होगया। उस मनुष्यभवमें संयमको, अथवा संयमासंयमको पालन कर बाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण-अच्युत कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभवमें संयम धारण कर मरा और इकतीस सागरोपमकी आयुवाले उपरिम ग्रैवयक के अहमिन्द्रोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँसे च्युत हो मनुष्य हुआ, और संयमको धारण कर पुनः उक्त प्रकारसे बीस, बाईस और चोवीस सागरोपमकी आयुवाले देवों और अहमिन्द्रोंमें क्रमशः उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह पूरे एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोपम काल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस तरह मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध होगया। उक्त विवेचनमें यह बात ध्यान रखनेकी है कि वह जीव जितने बार मनुष्य हुआ, उतने बार मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम ही देवायुको प्राप्त हुआ हैं, अन्यथा बतलाए गए कालसे अधिक अन्तर हो जायगा। कुछ कम दो छ्यासठ सागरोपम कहने का अभिप्राय यह है कि वह जीव प्रथम छ्यासठ सागरोपम काल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर बीचमें सम्यग्मिथ्यत्व गुणस्थानको प्राप्त करके पुनः दूसरी बार छ्यासठ सागरोपम काल तक सम्यक्त्व के साथ रहा और दो छ्यासठ सागरोपमकालके अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इसलिए उतना काल उनमेंसे घटा दिया गया।

यहां ध्यान रखनेकी खास बात यह है कि काल-प्ररूपणामें जिन-जिन गुणस्थानोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल बतलाया गया है, उन-उन गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। किन्तु उनके सिवाय शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर होता है। इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा कभी भी विरहको नहीं प्राप्त होनेवाले

छह गुणस्थान हैं - १ मिथ्यादृष्टि, २ असंयतसम्यग्दृष्टि, ३ संयतासंयत, ४ प्रमत्तसंयत, ५ अप्रमत्तसंयत और ६ सयोगिकेवली। इन गुणस्थानोंमें केवल एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाया गया है, जिसे ग्रन्थ-अध्ययनसे पाठक भली भांति जान सकेंगे।

जिस प्रकार ओघसे अन्तरका निरूपण किया गया है उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी उन-उन मार्गणाओंमें संभव गुणस्थानोंका अन्तर जानना चाहिए। मार्गणाओंमें आठ सान्तरमार्गणाएं होती हैं, अर्थात् जिनका अन्तर होता है। जैसे-१ उपशमसम्यक्त्वमार्गणा, २ सूक्ष्मसाम्परायसंयममार्गणा, ३ आहारककाययोगमार्गणा, ४ आहारकमिश्रकाययोगमार्गणा, ५ वैक्रियिकमिश्रकाययोगमार्गणा, ६ लब्ध्यपर्याप्तमनुष्यगतिमार्गणा, ७ सासादनसम्यक्त्वमार्गणा और ८ सम्यग्मिथ्यात्वमार्गणा। इन आठोंका उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः १ सात दिन, २ छह मास, ३ वर्षपृथक्त्व, ४ वर्षपृथक्त्व, ५ बारह मुहूर्त, और अन्तिम तीन सान्तर मार्गणाओंका अन्तरकाल पृथक् पृथक् पल्योपमका असंख्यातवां भाग हैं। इन सब सान्तर मार्गणाओंका जघन्य अन्तरकाल एक समयप्रमाण ही है। इत सान्तर मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाएं नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर-रहित हैं, यह ग्रन्थके स्वाध्यायसे सरलतापूर्वक हृदयंगम किया जा सकेगा।

२ भावानुगम

कर्मोंके उपशम, क्षय आदिके निमित्तसे जीवके जो परिणामविशेष होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं। वे भाव पांच प्रकारके होते हैं। १ औदयिकभाव, २ औपशमिकभाव, ३ क्षायिकभाव, ४ क्षायोपशमिकभाव और ५ पारिणामिकभाव। कर्मोंके उदयसे होनेवाले भावोंको औदयिकभाव कहते हैं। इसके इक्कीस भेद हैं - चार गतियाँ (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति), तीन लिंग (स्त्री,पुरुष, और नपुंसकलिंग) यहां लिंगसे वेद लिया गया है,) चार कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ) मिथ्यादर्शन, असिध्दत्व अज्ञान, छह लेश्याएं (कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, और शुक्ललेश्या), तथा असंयम। मोहनीयकर्मक उपशमसे (क्योंकि, ज्ञानावरणादि शेष सात कर्मोंका उपशम नहीं होता है) उत्पन्न होनेवाले भावोंको औपशमिक भाव कहते हैं। इसके दो भेद हैं - १ औपशमिकसम्यक्त्व और २ औपशमिकचारित्र। कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायिकभाव कहते हैं। इसके नौ भेद हैं - १ क्षायिकसम्यक्त्व, २ क्षायिकचारित्र, ३ क्षायिकज्ञान, ४ क्षायिकदर्शन, ५ क्षायिकदान, ६ क्षायिकलाभ, ७ क्षायिकभोग, ८क्षायिकउपभोग और ९ क्षायिकवीर्य। कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायोपशमिकभाव कहते हैं। इसके अट्ठारह भेद हैं - चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान), तीन अज्ञान (कुमति, कुश्रुत और विभंगावधि), तीन दर्शन (चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन), पाँच लब्धियां (क्षायोपशमिक दान, लाभो, भोग, उपभोग और वीर्य), क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र और संयमासंयम। इन पूर्वोक्त चारों भावोंसे विभिन्न कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखते हुए जो भाव होते हैं, उन भावोंको पारिणामिक भाव कहते हैं। इसके

तीन भेद हैं - १ जीवत्व, २ भव्यत्व और ३ अभव्यत्व।

इन पूर्वोक्त भावोंके अनुगमको भावानुगम कहते हैं। इस अनुयोगद्वारमें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा भावोंका विवेचन किया गया है। ओघनिर्देशकी अपेक्षा प्रश्न किया गया है कि ' मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? इसके उत्तरमें कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, क्योंकि, जीवोंके मिथ्या दृष्टि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होती हैं। यहां यह शंका उठाई गई है कि, जब मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वभावके अतिरिक्त ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कषाय, भव्यत्व आदि और भी भाव होते हैं, तब यहां केवल एक औदयिकभावको ही बताने का क्या कारण हैं ? इस शंकाके उत्तरमें कहा गया है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके औदयिकभावके अतिरिक्त अन्य भाव भी होते हैं, किन्तु वे मिथ्यादृष्टित्वके कारण नहीं हैं, एक मिथ्यात्वकर्मका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण होता हैं, इसलिये मिथ्यादृष्टिको औदयिकभाव कहा गया हैं।

सासादनगुणस्थानमें पारिणामिकभाव बताया गया है, और इसका कारण यह कहा गया है कि जिस प्रकार जीवत्व आदि पारिणामिक भावोंके लिए कर्मोंका उदय आदि कारण नहीं है, उसी प्रकार सासादनसम्यक्त्वके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये कोई भी कारण नहीं हैं, इसलिए इसे यहां पारिणामिकभाव ही मानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षायोपशमिकभाव होता है। यहां शंका उठाई गई है कि प्रतिबंधीकर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके स्वाभाविक गुणका अंश पाया जाता है, वह क्षायोपशमिक कहलाता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए तो सम्यक्त्वगुणकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा सम्यग्मिथ्याकर्मके सर्वघातीपना नहीं बन सकता है। अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक सिद्ध नहीं होता है ? इसके उत्तरमें कहा गया है कि, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक एक मिश्रभाव उत्पन्न होता है। उसमें जो श्रध्दानांश है, वह सम्यक्त्वगुणका अंश हैं। उसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय नष्ट नहीं करता है, अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है।

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक, ये तीन भाव पाये जाते हैं, क्योंकि, यहांपर दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये तीनों होते हैं।

यहां यह बात ध्यानमें रखना योग्य है कि चौथे गुणस्थान तक भावोंका प्ररूपण दर्शनमोहनीय कर्मकी अपेक्षा किया गया है। इसका कारण यह है कि गुणस्थानोंका तारतम्य या विकाश-क्रम मोह और योग के निमित्तसे है। मोहकर्मकि भेद हैं - एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। आत्माके सम्यक्त्वगुणको घातनेवाला दर्शनमोहनीय है। उसके निमित्तसे आत्मा वस्तुस्वभावको या अपने हित-अहितको देखता और जानता हुआ भी श्रद्धान नहीं कर सकता है। चारित्रगुणको घातनेवाला चारित्रमाहनीयकर्म है। उसके निमित्तसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान करते हुए भी सन्मार्गको जानते हुए भी, जीव उसपर चल नहीं पाता है। मन, वचन और कायकी चंचलताको योग कहते हैं। इसके निमित्तसे आत्मा सदैव परिस्पन्दनयुक्त रहता है, प्रारंभ के चार गुणस्थान दर्शनमोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम आदिके निमित्तसे उत्पन्न होते हैं,

इसलिए उन गुणस्थानोंमें दर्शनमोहकी अपेक्षासे भावोंका निरूपण किया गया है। तथापि चौथे गुणस्थान तक रहनेवाला असंयमभाव चारित्रमोहनीयकर्मके उदयकी अपेक्षासे है, अतः उसे औदयिकभाव ही जानना चाहिए। पांचवेंसे लेकर बारहवें तक आठ गुणस्थानोंका आधार चारित्रमोहनीयकर्म है अर्थात् ये आठों गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्मके क्रमशः क्षयोपशम, उपशम और क्षयसे होते हैं, अर्थात् पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें क्षायोपशमिकभाव; आठवें नवें, दशवें और ग्यारहवें, इन चारों उपशामक गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव; तथा क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानमें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें क्षायिकभाव कहा गया है। तेरहवें गुणस्थानमें मोहका अभाव हो जानेसे केवल योगकी ही प्रधानता है और इसीलिए इस गुणस्थानका नाम सयोगिकेवली रखा गया है। चौदहवें गुणस्थानमें योगके अभावकी प्रधानता है, अतएव अयोगिकेवली ऐसा नाम सार्थक है । इस प्रकार थोडेमें यह फलितार्थ जानना चाहिए कि विवक्षित गुणस्थानमें संभव अन्य भाव पाये जाते हैं, किन्तु यहां भावप्ररूपणामें केवल उन्हीं भावोंको बताया गया है, जो कि उन गुणस्थानोंके मुख्य आधार हैं।

आदेशकी अपेक्षा भी इसी प्रकारसे भावोंका प्रतिपादन किया गया है, जो कि ग्रंथावलोकनसे व प्रस्तावनामें दिये गये नकाशोंके सिंहावलोकनसे सहजमें ही जाने जा सकते हैं।

३ अल्पबहुत्वानुगम

द्रव्यप्रमाणानुगम में बतलाये गये संख्या-प्रमाणके आधार पर गुणस्थानों और मार्गणा-स्थानोंमें संभव पारस्परिक संख्याकृत हानि और अधिकताका निर्णय करनेवाला अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार है। यद्यपि व्युत्पन्न पाठक द्रव्यप्रमाणनुगम अनुयगद्वारके द्वारा ही उक्त अल्पबहुत्वका निर्णय कर सकते हैं, पर आचार्यने विस्ताररुचि शिष्योंके लाभार्थ इस नामका एक पृथक् ही अनुयोगद्वार बनाया, क्योंकि, संक्षेपरुचि शिष्योंकी जिज्ञासाको तृप्त करना ही शास्त्र-प्रणयनका फल नहीं बतलाया गया है।

अन्य प्ररूपणाओंके समान यहां भी ओघनिर्देश और आदेशनिर्देशकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका निर्णय किया गया है। ओघनिर्देशसे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा शेष सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं, क्योंकि, इन तीनों ही गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करनेवाले जीव एक दो को आदि लेकर अधिकसे अधिक चौपन तक ही पाये जाते हैं। इतने कम जीव इन तीनों उपशामक गुणस्थानोंको छोड़कर और किसी गुणस्थानमें नहीं पाये जाते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव भी पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त उपशामक जीव ही प्रवेश करते हुए इस ग्यारहवें गुणस्थानमें आते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उपशामकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एक सौ आठ जीवोंके दूने प्रमाणस्वरूप संख्यातगुणितता पाई जाती है। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं,

क्योंकि, उक्त क्षपक जीव ही इस बारहवें स्थानमें प्रवेश करते हैं। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही परस्पर तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण अर्थात् एक सौ आठ हैं। किन्तु सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा प्रविश्यमान जीवोंसे संख्यातगुणित है, क्योंकि पांचसौअट्ठानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख अट्ठानवे हजार पांचसौ दो (८९८५०२) संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती है। दूसरी बात यह है कि इस तेरहवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षसे कम पूर्वकोटीवर्ष माना गया है। सयोगिकेवली जिनोंसे उपशम और क्षपकश्रेणीपर नहीं चढनेवाले अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, अपमत्तसंयतोंका प्रमाण दो करोड छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एकसौ तीन (२९६९९१०३) है। अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यागुणित हैं, क्योंकि, उनसे इनका प्रमाण दूना अर्थात् पांच करोड़ तेरानवे लाख अट्ठानवे हजार दोसौ छह (५९३९८२०६) है। प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयमकी अपेक्षा सासादनसम्यक्त्वका पाना बहुत सुलभ है। यहांपर गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग जानना चाहिए, अर्थात् आवलीके असंख्यातवें भागमें जितने समय होते हैं, उनके द्वारा संयतासंयत जीवोंकी राशिको गुणित करने पर जो प्रमाण आता है, उतने सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, दूसरे गुणस्थानकी अपेक्षा तीसरे गुणस्थान का काल संख्यातगुणा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिकी अपेक्षा चौथे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवें भागगुणित है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त होते हैं। इस प्रकार यह चौदहों गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है, जिसका मूल आधार द्रव्यप्रमाण है। यह अल्पबहुत्व गुणस्थानोंमें दो दृष्टियोंसे बताया गया है- प्रवेशकी अपेक्षा और संचयकालकी अपेक्षा। जिन गुणस्थानोंमें अन्तरका अभाव है अर्थात् जो गुणस्थान सर्वकाल संभव है, उनका अल्पबहुत्व संचयकालकी ही अपेक्षासे कहा गया है। ऐसे गुणस्थान, जैसा कि अन्तरप्ररूपणामें बताया जा चुका है, मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार और सयोगिकेवली, ये छह हैं। जिन गुणस्थानोंमें अन्तर पड़ता है, उनमें अल्पबहुत्व प्रवेश और संचयकाल, इन दोनोंकी अपेक्षा बताया गया है। जैसे-अन्तरकाल समाप्त होनेके पश्चात् उपशामक और क्षपक गुणस्थानोंमें कमसे कम एक दो तीनसे लगाकर अधिकसे अधिक ५४ और १०८ तक जीव एक समयमें प्रवेश कर सकते हैं, और निरन्तर आठ समयोंमें प्रवेश करने पर उनके संचयका प्रमाण क्रमशः ३०४ और ६०८ तक एक एक गुणस्थानमें हो जाता है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानका प्रवेश और संचय ग्रन्थानुसार जानना चाहिए। ऐसे गुणस्थान चारों उपशामक, चारों क्षपक, अयोगिकेवली सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि हैं।

इसके अतिरिक्त इस अनुयोगद्वारमें मूलसूत्रकारके एक ही गुणस्थानमें सम्यक्त्वकी अपेक्षासे भी अल्पबहुत्व बताया गया है। जैसे-असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम

हैं। उपशमसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। इस हीनाधिताका कारण उत्तरोत्तर संचयकालकी अधिकता है। संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि, देशसंयमको धारण करनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका होना अत्यन्त दुर्लभ है। दूसरी बात यह है कि तिर्यंचोंमें क्षायिक सम्यक्त्वके साथ देशसंयम नहीं पाया जाता है। इसका कारण यह है कि तिर्यचोंमें दर्शन मोहनीयकर्मकी क्षपणा नहीं होती है। इसी संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं और उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं। प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, उनसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यागुणित हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। इस अल्पबहुत्वका कारण संचयकालकी हीनाधिकता ही है। इसी प्रकारका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें जानना चाहिए। यहां ध्यान रखनेकी बात यह है कि इन गुणस्थानोंमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व, ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं। यहां वेदकसम्यक्त्व नहीं पाया जाता, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है। अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशमसम्यक्त्वी जीव सबसे कम हैं, उनसे उन्हीं गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी जीव संख्यातगुणित हैं। आगेके गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, वहां सभी जीवोंके एकमात्र क्षायिकसम्यक्त्व ही पाया जाता है। इसी प्रकार प्रारंभके तीन गुणस्थानोंमें भी यह अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें सम्यग्दर्शन होता ही नहीं है।

जिस प्रकार यह ओघकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी मार्गणास्थानोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिए। भिन्न भिन्न मार्गणाओंमें जो खास विशेषता है, वह ग्रन्थके स्वाध्यायसे ही हृदयंगम की जा सकेगी। किन्तु स्थूलरीतिका अल्पबहुत्व द्रव्य प्रमाणानुगममें (पुस्तक ३) पृष्ठ ३२ से ४२ तक अंकसंदृष्टिके साथ बताया गया है, जो कि वहांसे जाना जा सकता है। भेद केवल इतना ही है कि वहां वह क्रम बहुत्वसे अल्पत्वकी ओर रखा गया है।

इन प्ररूपणाओंका मथितार्थ साथमें लगाये गये नकशोंसे सुस्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी समाप्तिके साथ **जीवस्थाननामक प्रथम खंडकी** आठों प्ररूपणाएं समाप्त हो जाती हैं।